शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

अप्रेल : १९५८ ☆ वर्ष तेरहवाँ, चैत्र वीर नि०सं० २४८४ ☆ अंक : १२

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

मोक्ष की भावना हो तो.....

अहो! जिन्हें धर्म की भावना हो, मोक्ष की भावना हो, वे जीव आत्मस्वभाव का निरीक्षण करें.... आत्मा में अंतर अवलोकन करें.... वही मोक्षदाता है; आत्मा के अंतर अवलोकन बिना भव का अंत नहीं आता। मोक्षदशा आत्मा में से प्रगट होती है, इसलिये आत्मा की ही शरण लो! राग में से मोक्षदशा नहीं आती, इसलिये राग की शरण छोड़ो! राग की शरण छोड़कर अंतर में चैतन्यतत्त्व की शरण लेकर वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करना, सो धर्म है; और उसी से भव का अन्त होता है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१५६]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मिथ्यादृष्टि को सम्यक्चारित्र नहीं होता

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग का सम्यक्चारित्र कैसा होता है —उसका भान मिथ्यादृष्टि को नहीं होता, इसलिये उसे तो उस चारित्र की यथार्थ भावना भी नहीं होती। सम्यक्दृष्टि को मोक्षमार्ग के सम्यक्चारित्र का यथार्थ भान होता है और उसी को उस चारित्र की यथार्थ भावना होती है। चारित्र तो आत्मा का वीतरागभाव है, उसे अज्ञानी नहीं जानता और देह की क्रिया को अथवा शुभराग को चारित्र मानकर उसी की भावना करता है, इसलिये अज्ञानी को तो चारित्र के नाम से भी मिथ्यात्व का ही पोषण होता है। अविरत सम्यक्दृष्टि को भले ही मुनिदशा आदि का विशेष चारित्र न हो, तथापि उसे अंतर में उस चारित्र का भान और भावना तो होती है; अप्रत्याख्यानीय कषायसहित होने पर भी उसकी भावना नहीं होती। किन्तु जिसे अभी सम्यग्दर्शन ही नहीं है, उसे तो चारित्रदशा का यथार्थ भान या भावना भी नहीं हाहेती तो फिर उसे सम्यक् -चारित्र तो कहाँ से हो सकता है ? चारित्र, वह धर्म है, किन्तु उसका मूल तो सम्यक्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र अथवा उसकी भावना नहीं होती। छहढाला में भी कहा है कि—

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

[— रात्रि चर्चा से]

आत्मधर्म

अप्रेल : १९५८ ☆ वर्ष तेरहवाँ, चैत्र वीर नि०सं० २४८४ ☆ अंक : १२

अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की कुछ शक्तियाँ

[२६]

साधारण-असाधारण-साधारणासाधारण-धर्मत्व शक्ति

[गतांक १५५ से चालू]

ज्ञानस्वरूप आत्मा की शक्तियों का वर्णन चल रहा है। २५ शक्तियों का वर्णन हो चुका है, अब २६ वीं शक्ति का वर्णन प्रारम्भ हो रहा है। स्व-पर के समान, असमान और समान-असमान—ऐसे तीन प्रकार के भावों के धारणस्वरूप साधारण-असाधारण साधारणासाधारण धर्मत्वशक्ति है।

आत्मा में अनंत धर्म हैं, किंतु वे सब एक से नहीं हैं; उनमें कुछ साधारण हैं, कुछ असाधारण हैं, और कुछ साधारण-असाधारण हैं; इसप्रकार तीन प्रकार के धर्म हैं; उन तीनों प्रकार के धर्मों को धारण करने की आत्मा में शक्ति है। उस शक्ति का नाम 'साधारण-असाधारण - साधारणासाधारण धर्मत्व शक्ति' है।

साधारण धर्म अर्थात् क्या ?

—जो धर्म जीव में हो तथा जीव के अतिरिक्त अन्य द्रव्य में भी हो, वह साधारणधर्म है,—जैसे कि अस्तित्वधर्म जीव और अजीव समस्त द्रव्यों में है, इसलिये वह साधारणधर्म अथवा सामान्यगुण है।

असाधारणधर्म अर्थात् क्या ?

—जो धर्म जीव में हो और जीव के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में न हो, वह जीव का असाधारण धर्म है। जैसे कि—ज्ञानधर्म, जीव में ही हैं और जीव के अतिरिक्त अन्य किन्हीं द्रव्यों में नहीं है; इसलिये वह जीव का असाधारणधर्म अथवा विशेषधर्म है।

साधारण-असाधारणधर्म अर्थात् क्या ?

—जीव का जो धर्म अन्य कितने ही द्रव्यों के साथ समान हो और कितने ही द्रव्यों के साथ असमान हो, उसे साधारण-असाधारणधर्म कहते हैं। जैसे कि जीव में अमूर्तधर्म है, वह आकाशादि में भी है, इसलिये आकाशादि की अपेक्षा से वह साधारण है और पुद्गल में अमूर्तपना नहीं है, इसलिये पुद्गल की अपेक्षा से वह असाधारण है,—इसप्रकार अमूर्तपना, वह जीव का साधारण-असाधारणधर्म है।

इसप्रकार जीव में तीनों प्रकार के धर्म एक साथ हैं। धर्म तो अनंत हैं, किन्तु इन तीन प्रकारों में उन समस्त धर्मों का समावेश हो जाता है।

आत्मा है ?—कहते हैं हाँ; आत्मा भी है और उसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी हैं। होना अर्थात् अस्तित्व तो समस्त पदार्थों में है, इसलिये वह सामान्यधर्म है। अकेले अस्तित्व से आत्मा का अन्य द्रव्यों से पृथक् स्वरूप लक्ष में नहीं आता।

आत्मा है तो अवश्य, लेकिन वह कैसा है ?

—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनंदस्वरूप है, ज्ञान-आनंद आदि धर्मों से देखने पर आत्मा समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न लक्ष में आता है, क्योंकि आत्मा के अतिरिक्त कहीं ज्ञान या आनंद नहीं है। इसप्रकार ज्ञान-आनंद, वे आत्मा के असाधारणधर्म हैं। आत्मा की वह मुख्य विशेषता है। उस विशेषता द्वारा आत्मा अन्य द्रव्यों से पृथक् हो जाता है। अस्तित्व कहने से अन्य द्रव्यों की अपेक्षा आत्मा की कोई विशेषता मालूम नहीं होती और ज्ञानस्वरूप कहने से आत्मा की अन्य द्रव्यों से भिन्नता-विशेषता ज्ञात होती है।

और आत्मा को अमूर्त कहने से भी उसका वास्तविक स्वरूप सर्व पदार्थों से पृथक लक्ष में

नहीं आता, क्योंकि अमूर्त तो आकाश भी है; अमूर्त कहने से सिर्फ मूर्त-पुद्गलद्रव्य से असाधारणता ज्ञात होती है, इसलिये उस धर्म को साधारण-असाधारण धर्म कहते हैं।

इसप्रकार अस्तित्वादि साधारणधर्म, ज्ञान-आनंदादि असाधारणधर्म तथा अमूर्त आदि साधारण-असाधारणधर्म—ऐसे तीनों प्रकार के धर्म आत्मा में है। 'आत्मा सत्, चैतन्य, अमूर्तिक' है—ऐसा कहने से उपरोक्त तीनों प्रकार के धर्म उसमें आ जाते हैं।

ज्ञानगुण सर्व जीवों में है; तथापि इस जीव का जो ज्ञान है, वह अन्य जीवों में नहीं है, इसलिये अपने ज्ञान द्वारा स्वयं अन्य सर्व जीवों से भिन्न अनुभव में आता है।

अस्तित्वरूप से आत्मा और समस्त पदार्थ समान हैं; किन्तु आत्मा में ज्ञान है और जड़ में ज्ञान नहीं है; इसप्रकार आत्मा की विशेषता है। जिसप्रकार पुद्गल में रूपीपना अर्थात् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण हैं, वे अन्य किसी द्रव्य में नहीं है; इसलिये रूपीपना, वह पुद्गल का असाधारण धर्म है। उसी प्रकार-ज्ञान-दर्शन-आनंद जीव में हैं, और अन्य पदार्थों में नहीं हैं, इसलिये ज्ञानादि वे जीव के असाधारण धर्म हैं।

यदि सर्व प्रकार से सर्व वस्तुएँ समान ही हों और सबके विशेष धर्म पृथक् न हों तो 'यह आत्मा है और यह पर है'—ऐसी भिन्नता का ज्ञान कैसे होगा? 'यह वस्तु आत्मा है और यह वस्तु आत्मा नहीं है'—ऐसी भिन्नता आत्मा के असाधारणधर्म द्वारा ज्ञात होती है।

पुनश्च, जिसप्रकार आत्मा के अस्तित्वादि गुण आत्मा में हैं, उसीप्रकार पर में भी हैं। आत्मा का एक भी गुण पर में नहीं है; परन्तु आत्मा की जाति के (अस्तित्वादि) कुछ गुण पर में हैं। यदि ऐसा न हो और सर्वथा असमान धर्म ही हों तो आत्मा की भाँति पर का अस्तित्व सिद्ध ही नहीं हो सकता; इसलिये आत्मा है और परवस्तु नहीं है; अथवा परवस्तु है और आत्मा नहीं है—ऐसा हो जाये; किन्तु ऐसा नहीं है। आत्मा भी अस्तिरूप है और परवस्तु भी अस्तिरूप है, आत्मा भी वस्तु है और परवस्तु भी वस्तु है;—इसीप्रकार अस्तित्व, वस्तुत्वादि साधारणधर्म है; और आत्मा के ज्ञान-आनंदादिभाव परद्रव्यों में नहीं हैं; इसलिये आत्मा की पर से असाधारणता-भिन्नता है।

जिसप्रकार मनुष्यरूप से सब आदमी समान हैं, तथापि उनमें कोई क्षत्रिय है, कोई ब्राह्मण है, कोई वैश्य है, कोई शूद्र है;—इसप्रकार उनमें विशेषता है। उसीप्रकार जड़-चैतन्य सर्व वस्तुएँ अस्तिरूप से समान हैं, किन्तु उनमें कोई वस्तु ज्ञानयुक्त है, कोई ज्ञानरहित है; कोई अमूर्त है, कोई मूर्त है—इसप्रकार उनमें विशेषधर्मों द्वारा विशेषता भी है।

आत्मा में अस्तित्व है, ज्ञान है, अमूर्तत्व है;—वे सब धर्म एकसाथ विद्यमान हैं। अस्तित्व सर्व वस्तुओं में समान है, किन्तु 'समान' कहने से एक ही अस्तित्वगुण सर्व वस्तुओं में विभाजित नहीं हो गया है; प्रत्येक वस्तु में अपना-अपना भिन्न अस्तित्वगुण है; एक का अस्तित्व दूसरों में नहीं है; किन्तु अपना-अपना अस्तित्व सबमें है; इसलिये उसे समान कहा है। जिसप्रकार लोगों को मनुष्यरूप से समान कहा, तो उससे कहीं सारे मनुष्य एक नहीं हो गये हैं; प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न है। उसीप्रकार अस्तित्वरूप से सर्व पदार्थों को समान कहा, किन्तु उससे कहीं समस्त पदार्थ समान नहीं हो गये; प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न है।

पर से तो आत्मा भिन्न है और अंतर के अरूपी विकार से भी उसका असली स्वभाव भिन्न है। जिसप्रकार आत्मा भी है और परमाणु भी है, तथापि दोनों भिन्न हैं, क्योंकि दोनों का स्वभाव भिन्न है। उसीप्रकार इस आत्मा में त्रिकाली शुद्धस्वभाव भी है और क्षणिक विकार भी है; अस्तित्व दोनों का होने पर भी शुद्धस्वभाव, विकाररूप नहीं और विकार, शुद्धस्वभावरूप नहीं है;—इसप्रकार दोनों की भिन्नता है।—दोनों में भिन्नता होने से अन्तर्मुखदृष्टि द्वारा विकार से भिन्नत्व का अनुभव होता है। जिसप्रकार विकार को और ज्ञान को पृथक् करके ज्ञानस्वभाव का अनुभव हो सकता है, उसीप्रकार ज्ञान और आनन्द को पृथक् नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे दोनों तो आत्मा के स्वभावरूप हैं; वे दोनों धर्म आत्मा में एकसाथ विद्यमान हैं; उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता। किन्तु विकार को धारण कर रखने का कोई धर्म आत्मा में नहीं है, इसलिये उसे पृथक् किया जा सकता है। विकार से तथा पर से भिन्न आत्मा का अनुभव हो सकता है, किंतु ज्ञान से या आनंद से भिन्न आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता।

जगत् में शरीरादि अजीव हैं, रागादि विकार भी हैं, और ज्ञानस्वभाव भी हैं।—सब कुछ है—ऐसा जानना चाहिये। यदि उनके अस्तित्व ही न जाने तो अज्ञान है और उन सबका अस्तित्व होने पर भी उनके भावों की विशेषता द्वारा उनकी भिन्नता को भी जानना चाहिये; यदि भिन्नता को न जाने तो वह अज्ञान है। शरीर है किंतु वह मैं नहीं हूँ, राग है किंतु वह मैं नहीं हूँ; मैं तो निरंतर ज्ञानस्वभाव ही हूँ—इसप्रकार पर से तथा विकार से भिन्न—ऐसे अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव करना, वह धर्म है।

शरीर है,
राग है,
ज्ञान है,

—तीनों होने पर भी उन तीनों का स्वरूप एक-सा नहीं है।

शरीर तो अजीव है, ज्ञानरहित है; उसकी और ज्ञान की बिल्कुल भिन्नता है। तथा, राग तो विकार है, और ज्ञान, आत्मा का स्वभाव है;—इसप्रकार राग और ज्ञान दोनों समान नहीं है, किंतु भिन्न-स्वभावी है।—ऐसा भेदज्ञान करके शुद्ध ज्ञानादि अनंत शक्तियों से एकाकार ऐसा अपना अनुभव करना, वह मोक्षमार्ग है।

आत्मा सर्वज्ञत्वशक्ति को धारण करनेवाला और पुद्गल बिल्कुल अचेतन;—ऐसा स्वभावभेद होने पर भी अस्तित्वरूप से दोनों में समानता है।

आत्मा असंख्यात प्रदेशी मर्यादित क्षेत्रवाला है और आकाश अनंत प्रदेशी अमर्यादित क्षेत्रवाला है; तथापि दोनों में अस्तित्व समान है, और अमूर्तत्व भी दोनों में समान है। अस्तित्वादि समान होने पर भी आत्मा की अपने चैतन्य गुण द्वारा आकाश के साथ असमानता है।

अस्तित्वादि सामान्य गुणों द्वारा सर्व द्रव्यों में समानता होने पर भी अपने-अपने ज्ञानादि विशेष गुणों द्वारा प्रत्येक द्रव्य में असमानता है। वे समान तथा असमान और समान-असमान ऐसे त्रिविध धर्म आत्मा में एक साथ विद्यमान हैं।—यद्यपि समस्त द्रव्यों में विद्यमान हैं किंतु यहाँ आत्मा की प्रधानता है।

अस्तित्व के कारण प्रत्येक द्रव्य अनादि-अनंत स्वतः सिद्ध स्थित है। परतः सिद्ध नहीं है।

वस्तुत्व के कारण प्रत्येक वस्तु अपनी प्रयोजनभूत क्रियासहित है। अपनी क्रियारहित नहीं है।

द्रव्यत्व के कारण प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायों के प्रवाहरूप से द्रवित होता है—परिणमित होता है, किसी की राह देखना पड़े—रुक जाये—ऐसा नहीं है।

प्रमेयत्व के कारण प्रत्येक द्रव्य प्रमाणज्ञान में प्रमेय होता है—ज्ञात होता है। सच्चा ज्ञान प्रगट करे और वस्तुस्वरूप ज्ञात न हो—ऐसा नहीं हो सकता।

अगुरुलघुत्व के कारण प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से व्यवस्थित रहता है और पर के द्रव्य-गुण-पर्यायरूप नहीं होता और न कोई किसी का कर्ता हो सकता है।

प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक द्रव्य अपने प्रदेशरूप आकार में स्थित रहता है। अपना आकाररूप स्वक्षेत्रसहित है, स्वक्षेत्ररहित नहीं है।

—यह अस्तित्व आदि सामान्यगुण हैं; वे प्रत्येक द्रव्य में हैं। जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश और काल—यह छहों द्रव्य इन सामान्यगुणों की अपेक्षा से समान हैं; अर्थात् सामान्यगुण

छहों द्रव्यों में हैं और ज्ञान, रूपीपना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व तथा परिणमन -हेतुत्व आदि विशेष धर्मों द्वारा प्रत्येक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से असाधारणपना है। आत्मा में अनंत धर्म हैं किन्तु उनमें ज्ञान असाधारण धर्म है, उसके द्वारा आत्मा लक्षित होता है।

देखो, यह आत्मा को ढूँढ़ने की रीति! भाई, 'आत्मा है'—इसप्रकार अकेले अस्तित्वगुण से आत्मा को ढूँढ़ेगा तो पर से भिन्न आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी। आत्मा अमूर्त है—इसप्रकार अकेले अमूर्तपने से ढूँढ़ने पर भी यथार्थ आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी; किन्तु 'ज्ञान' आत्मा का असाधारण स्वभाव है, उस ज्ञान द्वारा ढूँढ़ने पर, पर से तथा विकार से भिन्न और अपने अनंतधर्मों के साथ एकमेक ऐसे आत्मा की प्राप्ति होती है। विकार, सो आत्मा—ऐसी प्रतीति करने से आत्मा का वास्तविकस्वरूप प्राप्त नहीं होता, किन्तु 'ज्ञानस्वरूप आत्मा'—ऐसी प्रतीति करने पर आत्मा का यथार्थस्वरूप प्राप्त होता है। प्रत्येक शक्ति को भिन्न लक्ष में लेकर श्रद्धा करने से सम्पूर्ण आत्मा श्रद्धा में नहीं आता, किन्तु शक्ति द्वारा शक्तिमान ऐसे अखंड द्रव्य की श्रद्धा करने पर सम्पूर्ण आत्मा का अनुभव होता है, वह सम्यग्दर्शन की रीति है।

मेरे कारण शरीर में हलन-चलन होता है अथवा शरीर के कारण मुझे धर्म होता है—ऐसा जो मानता है, वह वास्तव में आत्मा के समान धर्म को नहीं मानता; क्योंकि आत्मा में अपना अस्तित्व है और शरीर के परमाणुओं में उनका अस्तित्व है।—इसप्रकार दोनों के समान अस्तित्व को न मानकर (-स्वतंत्र सत्पना न मानकर), दोनों की एकता मानकर अस्तित्व का लोप करता है (श्रद्धा में अस्वीकार करता है।) पुनश्च, आत्मा और शरीर की एकता मानता है, इसलिये उसने आत्मा के असमान धर्म को भी नहीं माना। शरीर तो रूपी-जड़ है और आत्मा चैतन्यस्वरूप है—इसप्रकार असाधारणधर्म से दोनों के स्वभाव भिन्न हैं, इसलिए वे दोनों भिन्न हैं—ऐसा वह नहीं मानता।

उसीप्रकार कर्म के कारण आत्मा में विकार होता है—ऐसा जो मानता है, वह कर्म और आत्मा की एकता ही मानता है, क्योंकि वह भी आत्मा और कर्म के भिन्न-भिन्न अस्तित्व को अथवा दोनों के भिन्न-भिन्न स्वभाव को नहीं मानता, इसलिये वह आत्मा के समान-असमानधर्मों को नहीं जानता। यदि समान, असमान तथा समान-असमान—ऐसे त्रिविध धर्मों का धारक—ऐसे आत्मा को पहिचान ले तो पर से और से भेदज्ञान होकर शुद्ध आत्मा का अनुभव हुए बिना न रहे।

—यहाँ २६ वीं साधारण-असाधारण-साधारणासाधारण धर्मत्वशक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

श्री पद्मनंदी आचार्य कृत श्री पद्मनन्दी पंचविंशतिका के देशव्रतोद्यन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

देशव्रतोद्योतनम्

(श्रावण वदी १३, सोमवार ता० १५-८-५५)

प्रवचनप्रसाद नामक दैनिक पत्र में पू० कानजी स्वामी का व्याख्यान संक्षेप में छपता था, उसमें से लिया हुआ यह अधिकार है।

इस शास्त्र के रचयिता दिगम्बर आचार्य श्री पद्मनंदि मुनिराज हैं। मुनि जंगल में निवास करते हैं, आत्मा का ज्ञान हो जाने से उनके उच्च चारित्रदशा होती है, उनके पास वस्त्र, पात्र आदि नहीं होते, वे केवल पीछी और कमंडल रखते हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने इस 'पद्मनंदि पंचविंशतिका' को 'वनशास्त्र' कहा है। आत्मा का भान कर, पात्र होकर इसे पढ़ना चाहिए। 'वनशास्त्र' कहने का अभिप्राय यह है कि इसकी रचना दिगम्बर मुनि ने की है। आत्मा आनन्दकन्द स्वरूप है, इसकी श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनपूर्वक अपनी अंतरंग शक्ति का अनुभव करते हुए वे वन में रहते थे। एक बार उनके शुभविकल्प हुआ और तत्परिणामस्वरूप उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की। ग्रंथ में पच्चीस अधिकार हैं। अनेक बार पर्वकाल में इस शास्त्र का प्रवचन किया जाता है।

इस अधिकार में बताया गया है कि गृहस्थदशा में मुनिधर्म नहीं अपना सके तो गृहस्थाश्रम में किस प्रकार धर्म हो सकता है। आत्मा की उग्र दशा चारित्र है। मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्ददशा का कारण चारित्रदशा है, वह मुनिधर्म में है। उसे विरला जीव ही पा सकता है। जो मुनिधर्म का पालन नहीं कर सके, उन्हें देशव्रत का प्रकाश (प्रगट) करना चाहिये। देशव्रत अर्थात् पंचम गुणस्थान का उद्योत किस प्रकार हो, इसका व्याख्यान इस अधिकार में किया गया है। सम्यग्दर्शन के बिना श्रावकपना नहीं होता। मुनि उच्च साधक अवस्था में होता है, सिंह जैसी निर्भय वृत्ति रखता है। ऐसा अगर कोई न हो सके तो सम्यग्दर्शनपूर्वक दान आदि षट् आवश्यक कर्म उस भूमिका में किए जाते

हैं। चरणानुयोग में ऐसा कथन आता है कि श्रावक छह कर्मों को करता है, उसे निमित्त का कथन समझना चाहिए।

क्या कुल में जन्म लेने से श्रावक हो जाते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर स्वरूप श्री पद्मनंदि आचार्य इस अधिकार के प्रथम श्लोक में बताते हैं कि पंचम गुणस्थान में श्रावकपना कैसे होता है ?

गाथा-१

बाह्याभ्यंतरसंगवर्जनतयाध्यानेनशुक्लेनयः
कृत्वा कर्म चतुष्टयक्षयमगात्सर्वज्ञतां निश्चिताम्॥
तेनेक्तानि वचांसि धर्मकथने सत्यानि नान्यानि तद्।
भ्राम्यत्यत्र मतिस्तु यस्य स महापापी न भव्योऽथवा॥१॥

श्रावकदशा से पहले मुमुक्षु जीव को सर्वज्ञ की यथार्थ श्रद्धा करनी चाहिए।

इस गाथा में श्रावक होने से पहले सम्यग्दर्शन कैसे होता है, यह बतलाया है। कोई भी जीव सम्यग्दृष्टि बनने के बाद श्रावक होता है। वह देव किसे मानता है ? वह एकमात्र सर्वज्ञ को ही देव मानता है, जो एक समय में तीन काल और तीनों लोक के ज्ञाता हैं, अन्य किसी को नहीं। जैसे हमें कोई वस्तु लेनी हो तो बाजार में उसकी भली प्रकार जाँच करके ही लेते हैं, उसी प्रकार उपदेशक सर्वज्ञ कैसे होते हैं, इसकी परीक्षा कर श्रद्धा की जाये, तभी सम्यग्दर्शन होता है।

भगवान कैसे हैं ? उन्होंने सर्वज्ञ होने के लिए क्या किया ? सर्वज्ञ होने से पहले वे बाह्य में दिगम्बर थे, उनके पास वस्त्र-पात्र नहीं थे; अंतरंग में चौदह प्रकार का परिग्रह—मिथ्यात्व, रागद्वेष कषाय छूट गए थे। आनन्दस्वरूप आत्मा का अवलम्बन करने से अंतरंग परिग्रह छूट जाता है; तत्परिणामस्वरूप बाह्य परिग्रह छूट गया। महाव्रत का विकल्प आता है; उस विकल्प को पुण्य बन्धन का कारण मानते हैं, हेय मानते हैं; ऐसी अवस्था मुनिदशा में होती है। आत्मा शुद्ध, अमूर्त है, उसमें तल्लीनतापूर्वक उज्ज्वल शुक्लध्यान प्रगट करके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय नामक चार कर्मों का नाश किया-यह निमित्त का कथन है। चरणानुयोग में निमित्त के अनेक कथन आते हैं। आत्मा, जड़ कर्मों का नाश तो कर ही नहीं सकती। आत्मा के शुद्ध स्वभाव में एकाग्रता करने से विभावादि नष्ट हो गए और कर्म स्वयमेव नष्ट हो गए, इसी को यह कहा जाता है कि उन्होंने कर्मों का नाश किया। एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान जिन्हें हो गया है,

ऐसे सर्वज्ञ की परीक्षा करनी चाहिए। जैसे व्यापार के लिए तनतोड़ परिश्रम किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ भी श्रम करना चाहिए।

सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं, अन्य के नहीं। जिन्होंने एक समय में तीन काल और तीन लोक को जान लिया, उन्हीं की वाणी सत्य है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य के वचन सत्य नहीं हैं। मुनि, सर्वज्ञ के अनुसार ही कहते हैं, सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं। देखो, ये पद्मनंदि आचार्य हजार वर्ष पूर्व हुए हैं उनका कहना हे कि जीव को अनंत काल में शांति नहीं मिली। वह कैसे मिल सकती है ? इसके लिए उपाय बताते हैं कि भगवान की वाणी से शांति मिलती है, अन्य की वाणी सत्य नहीं।

जिसने अपने ज्ञानस्वभाव की महिमा जान ली, उस ही ने सर्वज्ञ को मान लिया।

जिस जीव को सर्वज्ञदेव के वचनों में सन्देह है, उसे पापी समझना चाहिये। जो सर्वज्ञ भगवान और अन्य मिथ्यादृष्टि छद्मस्थ के वचनों में अंतर नहीं जानता, वह पापी है। अन्य वस्तुएँ, अथवा सोना आदि लेने में जीव परीक्षा करता है। अगर किसी पहाड़ में सोना हो और १०० रु० खर्च करने से अगर ६० रु० का ही सोना मिले तो वहाँ से कोई नहीं ले किन्तु अगर १०० रु० खर्चने से १२५ रु० का सोना मिले तो सोना निकाले। जैसे—इन कार्यों में परीक्षा कर ही कार्य करता है, उसी प्रकार जीव को सर्वज्ञ की परीक्षा करनी चाहिए। महाविदेह में वर्तमान में तीर्थंकर भगवान विराज रहे हैं, उनके वचनों में जो संदेह करता है, वह महापापी है, वह भव्य नहीं किन्तु अभव्य है।

प्रश्न—सर्वज्ञ ने जो देखा होगा, वही होगा तो फिर हमें क्या करना शेष रहा ?

समाधान—इस जगत में पूर्ण केवलज्ञान है; क्या उसका माहात्म्य तुझे आता है ? यह चैतन्य ऋद्धि तीनकाल-तीनलोक को जानता है, ऐसी ज्ञानदशा का माहात्म्य जो जानता है, वह शरीर, विकार और अल्पज्ञता का माहात्म्य भूल जाता है। उस समय उसे आत्मज्ञान होता है, ऐसा सर्वज्ञ के ज्ञान में तथा उनकी वाणी में भी आया है। तेरी आत्मा हमारे जैसा सर्वज्ञ होने योग्य है, वह वर्तमानकालीन रागद्वेष, तथा अल्पज्ञता जितना ही नहीं हैं किन्तु पूर्ण सर्वज्ञशक्ति से युक्त है, ऐसा कोई स्वीकार करे तो उसने सर्वज्ञ को माना कहा जाता है। केवलज्ञानी आत्मा का जो माहात्म्य नहीं जानता, उसे सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं है, वह अभव्य है, पापी है। अरहंतदेव को तीन काल और तीन लोक का युगपत ज्ञान है। पूर्ण ज्ञानदशावाली एक आत्मा को देखकर उसका माहात्म्य आने पर ज्ञान होता है कि वैसी ही पर्याय को शक्तिरूप धारण करनेवाली मेरी भी आत्मा है। ऐसा निर्णय करनेवाले ने ही 'सर्वज्ञ ने जो देखा होगा, वैसा ही होगा'—इसे यथार्थरूप से सच्चा स्वीकार किया है।

जो सर्वज्ञ के गीत अर्थात् अपने ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता के गीत नहीं गाता, वह महापापी है।

हे नाथ! आप शक्तिरूप सर्वज्ञ थे, सो पूर्ण हो गए; इसलिये स्वर्ग में देवियां भी आपकी महिमा गाती हैं। उन गानों को सुनने के लिए हरिण भी स्वर्गलोक में गया है, आपके उपाधि रहित पूर्ण ज्ञान हैं, ऐसे परमात्मा के गीत देव और देवियाँ गाते हैं। मृत्युलोक के हरिण को लगा कि मैं यहाँ वे गीत नहीं सुन सकूँगा; इसलिए वह उड़कर चन्द्रलोक में चला गया। लोगों को सर्वज्ञ परमात्मा के निर्णय करने का अवकाश नहीं है। इन्द्र, सर्वज्ञ के गीतों की महिमा करते हैं। जब हरिण ही सर्वज्ञ के गीत सुनने चन्द्रलोक चला गया, तब मनुष्य सर्वज्ञ के गीत न गाए तो महापापी है, अभव्य है। जिसे तुम्हारे गीतों की महिमा नहीं आती, वह श्रावक नहीं हो सकता। सर्वज्ञपद की वाणी का रसिक ही इस पद की प्रतीति करता है, उसे ही सम्यक्त्व होता है, सम्यक्त्व के बिना श्रावकत्व नहीं होता। जीव कमाई की बात हो तो रुचिपूर्वक सुनता है किंतु जो आपके गुणों की स्तुति हृदय में न लावे, वह पापी है, अभव्य है। जो ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता नहीं करते और राग में लाभ मानते हैं, वे सर्वज्ञ को नहीं मानते, वे महापापी हैं। कोई सर्वज्ञ को न माने और शंका करे, कि 'सर्वज्ञ भूतकाल को तो जानते हैं किंतु भविष्य को नहीं जानते' ऐसा माननेवाला पापी है। आकाश में १०८ बगुलों की पंक्ति चली जा रही हो, उसे देखकर सूझता मनुष्य १०८ कहे और कोई अन्धा पुरुष उसके साथ होड़ लगा कर कहे कि मैंने तो कम बगुले उड़ते देखे हैं, उसी प्रकार हे नाथ! अज्ञानी, सर्वज्ञ की वाणी में शंका करता है, वह शंका, देखनेवाले के साथ अन्धे की होड़ की तरह है। हे नाथ! एक समय में तीन काल और तीन लोक आपने जान लिए हैं—ऐसा जिनके विश्वास हो गया है, वे निर्णय करते हैं कि आत्मा सर्वज्ञ होने योग्य है, अल्पज्ञ या राग-द्वेष जितना नहीं है। ऐसा जो नहीं मानता, वह सूझते के साथ होड़ करनेवाले अन्धे की तरह मूर्ख है—ऐसा कहकर आचार्य अपनी निःशंकता प्रगट करते हैं—श्रावक को ऐसा विश्वास करना चाहिए। यहाँ न तत्त्वों में मोक्षतत्त्व की बात करी। सर्वज्ञदेव का बहुमान अपनी आत्मा का बहुमान आए बिना होता नहीं।

गाथा-२

एकोप्यत्र करोति यः स्थितिमतिं प्रीतः शुचौ दर्शने।
स श्लाघ्यः खलु दुःखितोप्युदयतो दुष्कर्मणः प्राणिभृत्॥

अन्यैः किं प्रचुरैरपि प्रमुदिततैरत्यंत दूरी-
कृतस्फीतानंदभरप्रदामृतपथर्मिथ्यापथप्रस्थितैः ॥२ ॥

बाह्य में प्रतिकूलता होते हुए भी जो सम्यग्दृष्टि है, वह प्रशंसनीय है।

पहली गाथा में मोक्षतत्त्व का महत्त्व बताया। मेरी आत्मा मुक्त होने की योग्यतावाली है, ऐसा निश्चय करना सम्यग्दर्शन है। पूर्व कर्म के उदय से भले ही उसे प्रतिष्ठा नहीं मिलती हो, वह भिखारी हो, सोने के लिए जगह न हो, खाने के लिए अनाज न हो, तथापि उसे विश्वास और ज्ञान है कि ये सब पूर्व कर्म के उदय से है, किन्तु मेरी आत्मा आनंदकन्द है, सर्वज्ञ होने योग्य है। ऐसी श्रद्धा करनेवाले को भले ही वस्त्र, अनाज आदि प्राप्त न हों, तथापि वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। वर्तमान के संयोग प्रतिकूल होते हुए भी उसकी आत्मा अनुकूल है। प्रतिकूलता का उदय अवगुण नहीं है। गरीबी हो, रोग हो, अविवाहित हो या पुत्ररहित हो किन्तु ये सब अवगुण नहीं हैं क्योंकि ऐसा तो पूर्व कर्म के उदय से हुआ है किन्तु अवगुण नहीं है। लोक में कहा जाता है कि पुण्य के कारण चतुर कहलाते हैं, उनको आचार्यदेव कहते हैं कि एक बार बात तो सुन! यह जो आत्मा का चैतन्यस्वभाव है, उसी से धर्म होता है; पुण्य-पाप में धर्म नहीं है, ऐसी श्रद्धावाला अत्यन्त सन्तुष्ट होता है। मेरा स्वभाव पूर्णानन्द है, ऐसा सन्तोष कर जो सम्यग्दर्शन धारण करे वह, भले ही अकेला हो, प्रशंसनीय है। अनुकूल संयोग तो पूर्व पुण्य के प्रताप से मिलते हैं किन्तु अगर आत्मा की श्रद्धा नहीं की तो वे समाप्त हो जानेवाले हैं। वर्तमान में कोई अविवाहित हो और हाथ से खाना बनाकर खाता हो तो भी यदि उसे आत्मा का भान है तो वह प्रशंसनीय है। भले ही उसका शरीर काला, कुबड़ा हो, वाणी अच्छी न हो, देखने में अच्छा न लगे किन्तु वह यदि आत्मस्वरूप में लीन है तो वह अच्छा है। पुण्य-पाप के भाव क्षणिक हैं, मेरा स्वभाव उपाधिरहित है, सर्वज्ञपद अंतर में हैं, बाहर में नहीं—ऐसे श्रद्धावाल व्यक्ति अकेला भी प्रशंसनीय है।

बाह्य में अनुकूलता होते हुए भी जो मिथ्यादृष्टि है, वह प्रशंसनीय नहीं है।

धनिक हो, प्रतिष्ठावान हो, बाल-बच्चोंवाला हो, जाति में बड़ा हो तो श्रावक कहलाये—ऐसा नहीं है। जो सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्ररूपी मोक्षमार्ग के राही नहीं हैं और वर्तमान काल में शुभ कर्म-पुण्य में एकत्वबुद्धि करके मिथ्यादृष्टि बनता है, वह प्रशंसा करने योग्य नहीं है। कोई हीरा-माणक के थाल में नाना प्रकार के मिष्टान्न खाता हो तो दुनिया उसे अच्छा कहती है किंतु सर्वज्ञदेव द्वारा कथित आत्मा की प्रतीति न हो तो भले ही लोग उसके गुणगान गाएं किन्तु उस

अवस्था का कारण पुण्य शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है क्योंकि वह पुण्य तो एक निश्चित अवधि के लिए है, उस अवधि के व्यतीत होते ही पुण्यजनित संयोग नष्ट होनेवाले हैं। अत: बाह्य के संयोगों से ही कोई सच्चा श्रावक नहीं बन जाता। पूर्व पुण्य के उदय से कितनी ही अपार संपत्ति हो जाये किन्तु यह आत्मा सर्वज्ञ होने योग्य है, भगवान की जाति का है—ऐसा जिसे विश्वास न हो, चाहे वह साधु ही क्यों न हो, उसके हजारों शिष्य अनुयायी हों अथवा बड़ा साहूकार हो, तथापि प्रशंसनीय नहीं है। पूर्व पुण्यजनित इष्ट संयोग भले ही न हो किंतु अगर आत्मा की तरफ दृष्टि है तो प्रशंसनीय है। शुभराग से धर्म होगा—ऐसी विपरीत मान्यतावाला भले ही राजा हो अथवा साधु हो किन्तु वह अनुमोदन करनेयोग्य नहीं है। यहाँ सम्यग्दर्शन का मूल्यांकन किया जा रहा है। जिसे पूर्व पुण्य के उदय में आनन्द की अनुभूति है और वर्तमान में पुण्यार्जन में आनन्द मानता है, इसलिए उसे आत्मा में आनन्द की अनुभूति नहीं है। जिन्हें पुण्य में मिठास नहीं मिलता है, उन्हें आत्मा में मिठास मिलता है, उनके संसार का शीघ्र अन्त होगा। अज्ञानी प्रश्न करता है कि संसार में पुण्य के बिना कैसे चला जा सकता है ? उसे उत्तर देते हैं कि भाई, तुझे सर्वज्ञ भगवान का लघुनंदन बनना नहीं आता।

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन।
केलि करै शिवमारग में जगमांहि जिनेसुर के लघुनन्दन॥

सर्वज्ञ का पुत्र होने से सर्वज्ञ का उत्तराधिकार मिलता है। पुण्यवान के जब तक पुण्य का उदय है, तब तक पैसा रहेगा, फिर हवा हो जायेगा। लघुनन्दन अर्थात् छोटा पुत्र। मुनि बड़े पुत्र हैं और सम्यग्दृष्टि, सर्वज्ञ का छोटा पुत्र। वह स्वभाव में लीनता करके सर्वज्ञपद प्राप्त करनेवाला है।

भावार्थ—पाप के उदय से दु:खी मनुष्य, यदि सम्यग्दृष्टि है तो प्रशंसा का पात्र है किंतु जो सम्यग्दर्शन से परांमुख है, पुण्य से धर्म मानता है, वह मिथ्यामार्ग में है। उसको भले ही बाह्य में पुण्य हो किन्तु वह प्रशंसनीय नहीं है; इसलिए सम्यग्दर्शन धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा प्रभुतासंपन्न है, जिसे उसकी प्रभुता का विश्वास नहीं है और अल्पज्ञता तथा रागद्वेष की प्रभुता मानता हो तो उसे भगवान की प्रभुता ज्ञात नहीं होती।

गाथा-३

बीजं मोक्षतरोर्दृशं भवतरोर्मिथ्यात्वमाहुर्जिना:।
प्राप्तायां दृसि तन्मुमुक्षुभिरलं यत्नो विधेयो बुधै:॥

संसारे बहुयोनिजालजटिले भ्राम्यनकुकर्मावृतः।
क प्राणी लभते महत्यपि गते काले हि तां तामिह॥३॥

ज्ञानस्वभावी आत्मा का पूर्ण विश्वास ही पूर्ण पवित्र मोक्षदशा का बीज है।

आचार्य पद्मनंदि कहते हैं कि आत्मा की पूर्ण अमृत आनन्ददशा मोक्षरूपी वृक्ष है, उसका बीज सम्यग्दर्शन है। जैसे आम का बीज उसकी गुठली ही होती है लेकिन आक फल नहीं होता; उसी प्रकार परमानंददशा, अरागी, वीतरागी-विज्ञानदशा का बीज सम्यक्दर्शन है। रागभाव छोड़कर आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा सम्यक्दर्शन है। ऐसा सम्यक्दर्शन होने के पश्चात् श्रावकत्व होता है। मोक्षरूपी वृक्ष का बीज देव, शास्त्र, गुरु की कृपा या उनका निमितत या पुण्य-पाप नहीं है, अपितु सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो देव-शास्त्र-गुरु निमित्त कहलाते हैं। सम्प्रदाय या कुल में जन्म लेने से ही कोई दिगम्बर नहीं बन जाता। आत्मा की पूर्ण दशारूप मोक्ष का बीज ही बोधि बीज है।

तत्त्व की विपरीत मान्यता नरक और निगोद का बीज है।

नरक और निगोद का बीज मिथ्यात्व है। आत्मस्वभाव से विपरीत मान्यता अनंत संसार का कारण है। पुण्य-पापभाव संसार के वास्तविक कारण नहीं हैं, सम्यग्दृष्टि के भी पुण्य-पाप भाव होते हैं लेकिन वे संसार के बीज नहीं हैं। सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए तत्त्वों की उल्टी मान्यता से जीव के चौरासी लाख भव होते हैं। इसलिए अगर वर्तमान में जीव मंदकषायी होगा तो उसे देवगति प्राप्त होगी किन्तु तत्पश्चात् वह नरक-निगोद में जायेगा, ऐसा त्रिलोकीनाथ कहते हैं, यह मेरा अपना कथन नहीं है। पूर्ण तत्त्व की श्रद्धा केवलज्ञान का बीज है, जो ऐसी श्रद्धा नहीं करता, वह भले ही मुनि हो लेकिन उसे सर्वज्ञ की भक्ति करना नहीं आता।

जीव भव्य है—ऐसा दिव्यध्वनि में आवे तो उसकी महान प्रतिष्ठा है और जीव अभव्य है—ऐसा आवे तो उसका महान अपमान है।

आत्मा की पूर्ण दशा प्रगट करने के अभिलाषी जीवों को सम्यग्दर्शन प्रगट कर उसके रक्षार्थ अनेक प्रयत्न करने चाहिए। प्रतिष्ठा या धन-सम्पत्ति, आवे या जावे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

लही भव्यता मोटुँ मान; कोणअभव्य त्रिभुवन अपमान।

यदि सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आवे कि यह जीव सम्यक्दृष्टि है तो यह उसके लिए महान

सम्मान है। इस सम्मान के सिवा और कैसा मान चाहिए? उनकी वाणी में यदि यह आवे कि यह जीव मुक्ति के योग्य नहीं है तो यह उनका बड़ा भारी अपमान है। इससे बढ़कर और क्या अपमान होगा? सांसारिक सामग्री–माया, संपत्ति, परिवार आदि भले ही मिल जायें, वह तेरे स्वभाव के विपरीत है; इसलिए भले ही पूर्व पुण्य के उदय से लक्ष्मी के ढेर सारी सम्पत्ति मिल जाये किन्तु ये सब आत्मस्वभाव के लिए प्रतिक्षण अपमानजनक ही हैं। पूर्व पाप का उदय होते हुए भी तू भव्य है, ऐसा विश्वास हो तो तेरा सम्मान है; इसलिए सम्यग्दर्शन प्राप्त कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। तुझे अपने आत्मस्वभाव की प्रभुता नहीं आती और पुण्य की प्रभुता आती है तो तू पुण्य की अभिलाषा करेगा, यह तेरे स्वभाव का अपमान है। बाह्य में प्रतिकूलता होते हुए भी स्वयं आत्मा है—ऐसा भान होवे तो तेरा सम्मान ही है, इसलिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि नरक, तिर्यंच आदि अनेक प्रकार की योनिवाले संसार में यह जीव अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। क्या चींटी, लट आदि की पर्यायों में सम्यग्दर्शन होगा? नहीं; वर्तमान में पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा की जाती है, मछली मारें, बन्दर मारें; आदि भाव तीव्र कषाय से होते हैं। ऐसे परिणाम इस काल में बहुत किए जाते हैं, इसलिए इस काल में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति दुर्लभ है। अतः उसकी प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करने चाहिए।

जैनधर्म का सन्देश

गत वर्ष दिल्ली में 'जैन-सेमिनार' का आयोजन हुआ था। जिसमें अनेक विदेशी विद्वानों एवं दार्शनिकों ने भाग लिया था। दिल्ली जैन समाज ने पू० गुरुदेव से अपना एक भाषण भेजने की प्रार्थना की थी और निम्नोक्त भाषण गुरुदेव के प्रवचनों के आधार पर तैयार करके दिल्ली भेजा गया था।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन।

जैनधर्म, वह आत्माश्रित धर्म है। जैनधर्म की एक मुख्य विशेषता है कि वह प्रत्येक वस्तु को स्वयं अपने से परिपूर्ण एवं स्वतंत्र घोषित करता है। इस विश्व में अनंत आत्मा हैं; उनमें से कोई भी आत्मा स्वयं अपनी शक्ति का विकास करके परमात्मा बन सकता है। आत्मा में ज्ञान-श्रद्धा-आनंद-पुरुषार्थ-अस्तित्व-नित्यत्व आदि अनंत शक्तियाँ हैं; उनमें ज्ञानशक्ति मुख्य है। जिन्होंने उस ज्ञानशक्ति की पूर्णता प्रगट की है, उन्हें सर्वज्ञ अरिहंत कहा जाता है। वे सर्वज्ञदेव अपने अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा समस्त विश्व को साक्षात् जानते हैं।

सर्वज्ञदेव ने इस विश्व में जीव के अतिरिक्त अन्य पाँच प्रकार के द्रव्य देखे हैं—पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल।—यह पाँचों द्रव्य 'अजीव' हैं; उनमें ज्ञानशक्ति नहीं हैं। इन्द्रियज्ञान द्वारा जो स्थूल पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, वह सब अजीव पुद्गलों का रूपान्तर है।

यह जीव, पुद्गल आदि छह द्रव्य जगत में अनादिकाल से स्वयं-सिद्ध हैं, सब द्रव्य अपनी-अपनी अनंत शक्ति सहित सदा संपूर्ण हैं। वे नित्य अपने मूलस्वरूप में रहते हैं और प्रतिक्षण अपनी अवस्थाओं का रूपांतर करते हैं। इसप्रकार नित्यस्थायी रहकर प्रतिक्षण अपनी एक अवस्था को बदलकर दूसरी अवस्थारूप होना—ऐसा जगत के पदार्थों का स्वरूप है। पदार्थों के उस स्वरूप का 'जैन गीता' में 'उत्पादव्यय-ध्रुवयुक्तं सत्'—कहकर वर्णन किया गया है।

'उत्पाद' होने पर सम्पूर्ण पदार्थ नया उत्पन्न नहीं होता, किंतु उसकी कोई एक अवस्था उसकी शक्ति में से व्यक्त होती है; अन्य कोई उसे उत्पन्न नहीं करता।

'व्यय' होने पर सम्पूर्ण पदार्थ नष्ट नहीं होता, किंतु उसकी कोई एक अवस्था नष्ट होती है; अन्य कोई उसे नष्ट नहीं करता।

प्रतिक्षण ऐसा उत्पाद-व्यय होने पर भी प्रत्येक पदार्थ अपने मूलस्वरूप से नित्य स्थायी

रहता है, उसे 'ध्रुवता' कहते हैं अन्य कोई उसे स्थिर रखनेवाला नहीं है।

ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप पदार्थों का जो समूह है, उसी के द्वारा इस विश्व की रचना हुई है। सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसे विश्व के प्रत्यक्ष ज्ञाता हैं; किंतु सृष्टा नहीं हैं। इस विश्व को या विश्व के किसी पदार्थ को ईश्वर ने नहीं बनाया है, किन्तु जेसे थे वैसा जाना है। जगत में पहले किसी भी स्वरूप से जिसका अस्तित्व न हो, उस की कभी उत्पत्ति नहीं हो सकती। शून्य में से सृष्टि की रचना नहीं हो सकती; इसलिये ईश्वर किसी भी पदार्थ का रचयिता नहीं है; ईश्वर जगत का ज्ञाता है किंतु कर्ता नहीं है।

'ईश्वर' वह सर्वज्ञता को प्राप्त आत्मा है। उसे परमात्मा कहते हैं। इस विश्व में भिन्न-भिन्न अनंत आत्मा हैं। यह आत्मा निरवधिकाल से अपने वास्तविक स्वरूप को चूककर देवगति में और पशुगति में, नरकगति में, और मनुष्यगति में अवतार धारण करके परिभ्रमण कर रहे हैं। उस परिभ्रमण में अपनी ज्ञानादि शक्तियों का तीव्ररूप से घात हो जाने के कारण वे दु:खी हैं। उस दु:ख से छूटने के लिये जब किसी शुभ घड़ी में किसी आत्मा को यथार्थ आकांक्षा जागृत होती है, तब आत्मानुभवी संत उसे उसका स्वरूप बतलाते हैं कि अरे जीव! तेरा आत्मा परमात्मशक्ति से परिपूर्ण है... तेरा आत्मा ही आनन्द का समुद्र है; अपने आत्मा से बाहर कहीं तेरा आनन्द नहीं है; इसलिये तू अपने आत्मा की ओर उन्मुख हो।—इसप्रकार अपने स्वरूप को जानकर उस ओर उन्मुख होने से आत्मा के परिणमन में ज्ञान-आनन्द की वृद्धि होती जाती है, और रागादि का नाश होता है... और अन्त में वह आत्मा अपने परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द को प्रगट करके परमात्मा हो जाता है।—इसप्रकार स्व प्रयत्न द्वारा कोई भी आत्मा, पामरता का नाश करके परमात्मा बन सकता है।

वर्तमान जैन साहित्य में 'समयसार' ऐसे परमात्मस्वरूप का उपाय बतलानेवाला एक महान शास्त्र है, और वह जैनधर्म की महागीता है। उस समयसार के रचयिता आचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी एक महान जैन संत-मुनि थे... वे वन में रहते थे... और उन्होंने सर्वज्ञ परमेश्वर सीमंधर भगवान के साक्षात् दर्शन किये थे। वे श्री समयसार की पहली ही गाथा में ढंढ़ेरा पीटकर घोषणा करते हैं कि—अहो जीवो! मैं सिद्ध हूँ, तुम भी सिद्ध हो... मेरे और तुम्हारे आत्मा में शक्तिरूप से परिपूर्ण प्रभुता विद्यमान है; उसको तुम उल्लासपूर्वक स्वीकार करो... अनादिकाल से आत्मा में पामरता की स्थापना की है, उसे निकाल दो और तुम्हारे आत्मा में प्रभुता भरी है, उस ओर दृष्टि करो।

सिद्धत्व, वह आत्मिक विकास की चरम सीमा है। उस सिद्धपद को प्राप्त परमात्माओं को राग-द्वेष अथवा लक्ष्मी-स्त्री आदि तो क्या, किंतु शरीर तक नहीं होता। उन शरीरादि के बिना ही वे परम सुखी हैं। उस सिद्धपद में शरीरादि न होने पर भी आत्मा अपने ज्ञान एवं आनन्दसहित नित्यरूप से ज्यों का त्यों स्थित रहता है। संसार एवं सिद्ध दोनों अवस्थाओं में अखंडरूप से यदि एक ही आत्मा स्वयं नित्यस्थायी न रहता हो और सर्वथा बदल जाता हो तो साधक अपने साध्य की सिद्धि के आनन्द का उपभोग कैसे कर सकेगा?—यदि आत्मा क्षण-क्षण में बदलकर दूसरी आत्मा बनता हो तो साधना एक आत्मा करेगा और उसके साध्य का उपभोग दूसरा करेगा, —लेकिन यह बात कैसे संभव हो सकती है? साधकदशा में जो आत्मा था, वही आत्मा नित्यस्थायी रहकर अपने साध्य की सिद्धि के आनन्द का निरन्तर उपभोग करता है।

किसी भी प्रकार के इन्द्रिय विषयों के सम्बन्ध बिना भी परमात्मा का सुख उत्कृष्ट है। प्रवचनसार शास्त्र में आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि:—

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमं त्ति विगद घादीणं।
सुणिदूण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति॥६२॥

—जिनके घातिकर्म नष्ट हो गये हैं, उनका सुख सर्व सुखों में परम अर्थात् उत्कृष्ट है। —ऐसा वचन सुनकर जो उसकी श्रद्धा नहीं करते, वे अभव्य हैं; भव्य तो उसे स्वीकार करते हैं—आदर करते हैं-श्रद्धा करते हैं।

इस संसार में सर्व जीव सुखी होना चाहते हैं। वह सुख अपने आत्मस्वभाव में ही है। ऐसे सुखसागर आत्मा की सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक्ज्ञान और उसमें एकाग्रता, वह सुख का उपाय है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह जैन शासन का एक महान सूत्र है।

—ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा जो मोक्ष के साधक हैं, उन्हें साधु अथवा मुनि कहा जाता है। उस मुनिदशा में वन में रहना, वस्त्र रहित रहना, दिन में एक ही बार खड़े-खड़े हाथ में ही अहिंसक भोजन लेना, धरती पर सोना—इत्यादि अनेक प्रकार के बाह्य आचार होते हैं। मुनिदशा के लिये योग्य उस-उसप्रकार के बाह्य आचार होने पर भी मात्र उन बाह्य आचारों पर से मुनिधर्म का माप नहीं निकलता। किसी को बाह्य आचार अधिक होने पर भी अंतर में अपने आत्मस्वरूप का भान न हो तो उसे धर्म नहीं होता। आत्मस्वरूप को जानकर उसमें एकाग्रता करना ही धर्म का साधन है।

जगत में बाह्य क्रियाओं से अथवा बाह्य शुभाशुभवृत्तियों से धर्म मान लेने की जो पद्धति चल रही है, उसको जैनधर्म नि:शंकरूप से अस्वीकार करता है कि—बाह्य क्रियाओं द्वारा अथवा बाह्य शुभाशुभ वृत्तियों द्वारा धर्म नहीं होता; सच्चा सुख अर्थात् धर्म तो आत्मस्वभाव के आधार से ही होता है; इसलिये तुम आत्मा को पहिचानो।

आत्मा को कैसे पहिचाना जाये ?—ऐसी यदि किसी को जिज्ञासा हो तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार में कहते हैं कि—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत् गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

आत्मा की परिपूर्णता को प्राप्त परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को जो जीव जानता है, वह अपने आत्मा को भी जानता है; क्योंकि वास्तव में उस परमात्मा का और इस आत्मा का स्वभाव समान है।

—इसप्रकार अपने आत्मा को जानकर, फिर उसी में लीनता द्वारा आत्मा, परमात्मा बन जाता है:—

सव्वे वि य अरहंता तेण विहाणेण खविद कम्मंसा।
किच्चा तधोवदेशं णिव्वादा ते णमो तेसिं॥८२॥

अनादिकाल के प्रवाहक्रम में एक के बाद एक अपनी परमात्मदशा को साधनेवाले अनंत आत्मा हो गये हैं। उन सर्व परमात्माओं ने इसी विधान से कर्मों का क्षय करके परमात्मदशा प्राप्त की है और फिर वैसा ही उपदेश देकर वे मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। उन भगवन्तों को नमस्कार हो।

****

भगवन्तों ने जिस मुक्तिमार्ग की साधना की और जिसका जगत् को उपदेश दिया, वह मुक्तिमार्ग आज भी भारत में चल रहा है। श्री कानजी स्वामी—जो कि भारत के एक महान आध्यात्मिक संत हैं—आज भी उस मुक्तिमार्ग को प्रकाशित कर रहे हैं। उनके उपदेश की कुछ झलक हम अपने विदेशी मेहमानों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। आशा है आप सब इसमें से मुक्तिमार्ग की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

****

भारत के अनेक तीर्थों की मंगल-यात्रा के पश्चात्

पूज्य गुरुदेव का सोनगढ़ आगमन

भक्तजनों द्वारा हार्षिक भव्य स्वागत

अत्यन्त भक्ति एवं उल्लासपूर्वक करीब पाँच सौ से अधिक भक्तों ने संघ सहित भारत के शाश्वत तीर्थराज श्री सम्मेदशिखरधाम तथा अन्य अनेक तीर्थों की पवित्र यात्रा करके परम पूज्य सद्गुरुदेव वैशाख शुक्ला ६, रविवार के दिन सोनगढ़ पधारे थे। उस प्रसंग पर हजारों भक्तों ने हार्दिक उल्लासपूर्वक गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया था, उसमें यह आत्मधर्म भी अपना स्वर मिलाता है।

सोनगढ़ जिनमन्दिर में वेदी-प्रतिष्ठा करके कार्तिक पूर्णिमा के दिन पूज्य गुरुदेव ने मंगल-विहार किया था... फिर पालेज (गुजरात) जिनमन्दिर में वेदी-प्रतिष्ठा करके बम्बई पधारे थे और वहाँ से एक के बाद एक नये-नये तीर्थधामों की उल्लासपूर्ण यात्रा करते-करते शाश्वत् सिद्धिधाम सम्मेदशिखर पहुँचे थे... हजारों भक्तजनोंसहित उस शाश्वत् सिद्धिधाम की यात्रा करते हुए गुरुदेव को अत्यंत आनन्द हुआ था और अनेक मंगल भावनाएँ स्फुरित हुई थीं... गुरुदेव की भक्ति एवं उल्लास देखकर भक्तों को भी महान हर्ष हुआ था... इसप्रकार शाश्वत् तीर्थराज की एक महान ऐतिहासिक यात्रा करने के पश्चात् फिर खंडगिरि-उदयगिरि आदि की यात्रा करते तथा कलकत्ता, दिल्ली, जयपुर आदि प्रधान जैननगरों में विचरते हुए पूज्य गुरुदेव वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन सोनगढ़ शांतिधाम पधारे थे और छह महीने से सूनी पड़ी हुई स्वर्णपुरी पुनः जगमगा उठी थी।

पूज्य गुरुदेव का वह प्रवास महामंगलकारी हुआ... अनेक पवित्र तीर्थ, हजारों जिनमन्दिर, हजारों वर्ष पुरानी एवं विशाल जिनप्रतिमाएँ तथा पुरानी गुफाओं आदि के दर्शन हुए... आज भी पूज्य गुरुदेव जब-जब उन सबका भावपूर्वक स्मरण करते हैं, तब भक्तों के हृदय पुनः-पुनः भक्ति से रोमांचित हो जाते हैं। गुरुदेव जहाँ-जहाँ गये, वहाँ लाखों जिज्ञासुओं ने उनके दर्शनों का तथा वाणी का लाभ लिया था.. और अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित करके उनका स्वागत किया था।

ऐसा महा मंगलकार्य करके पूज्य गुरुदेव जब सोनगढ़ पधारे थे, उस समय भक्तों ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक भव्य स्वागत किया था। सौराष्ट्र के गाँव-गाँव से भक्तजन उस स्वागत में भाग लेने आये थे। सोनगढ़ के मुख्य व्यक्तियों ने भी उसमें भाग लिया था—उस प्रसंग पर द्वार, मंडप, चौक

तथा ध्वजा-पताकाओं से स्वर्णपुरी को सजाया गया था। चाँदी के तथा हारों के द्वार से स्वाध्याय मन्दिर शोभायमान हो रहा था। गुरुदेव के पधारने से सारे नगर की शोभा बदल गई थी और चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छा गया था।

पूज्य गुरुदेव के पधारते ही भक्तों ने हार्दिक-उल्लासपूर्वक उनका स्वागत किया... जय-जयकारों से तथा बैन्डबाजों के मंगल नाद से सुवर्णपुरी का वातावरण गुंजित हो उठा... दूर से मानस्तंभ के दर्शन होते ही पूज्य गुरुदेव उस ओर निर्निमेष दृष्टि से निहारते रहे.... फिर जिनमन्दिर में सीमंधरनाथ से भेंट करते समय पूज्य गुरुदेव कुछ देर तक स्तब्ध होकर शांतिपूर्वक भगवान की ओर देखते रहे और वंदन करके भक्तिपूर्वक अर्घ चढ़ाया.... सीमंधर नाथ और उनके लघुनन्दन के मिलन का यह दृश्य हजारों भक्तजन आश्चर्यपूर्वक देख रहे थे।

तत्पश्चात् हजारों भक्तों के हर्षनाद के बीच पूज्य गुरुदेव ने स्वाध्याय मन्दिर में प्रवेश किया और अद्भुत शांतिपूर्वक मांगलिक सुनाते हुए आनन्दभाव एवं शांतिभाव से भरे हुए आत्मा के परमस्वभाव की महिमा बतलाई... आत्मा के परमभाव की ऐसी हृदय स्पर्शी महिमा को भक्तजन शांतचित्त से स्तब्ध होकर सुन रहे थे। मांगलिक के पश्चात् संघ की ओर से विद्वान भाई श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह ने भावपूर्ण स्वागत-प्रवचन किया और एक बालिका ने स्वागत-गान गाया। फिर स्वागत के हेतु आये हुए भक्तिभरे सन्देश पढ़कर सुनाये गये और अंत में पूज्य बेन श्री बेन ने भक्ति एवं उल्लासपूर्वक एक स्वागत गान गवाया था....

—इसप्रकार सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव के भव्य स्वागतपूर्वक तीर्थयात्रा महोत्सव सानन्द समाप्त हुआ।

— कहान गुरुदेव का यह तीर्थयात्रा महोत्सव जयवंत हो....

— यह यात्रा-महोत्सव भव्य जीवों को कल्याणकारी हो.....

— सर्व पवित्र तीर्थों को पुनः पुनः नमस्कार हो....

मृतक कलेवर में मूर्च्छा

पाँच इन्द्रियों से अथवा मन से मुझे किंचित् भी लाभ होता है—ऐसा जिसका अभिप्राय है, वह जीव, अचेतन शरीर में ही मूर्च्छित है; चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा को वह नहीं जानता।

चैतन्य भगवान आत्मा स्वयं मन का या इन्द्रियों का विषय नहीं होता; वह तो अन्तर्मुख अतीन्द्रियज्ञान का ही विषय है।—ऐसे आत्मा की अज्ञानी को खबर नहीं है; इसलिये वह इन्द्रिय-मन के विषयों में ही लुब्ध है।

जिसप्रकार केसरी सिंह अपने को बकरा मानकर बाड़े में बन्द हो जाये, उसीप्रकार परम पुरुषार्थी चैतन्य सिंह अपने को जड़ शरीररूप मानकर अज्ञान के कारण इस संसाररूपी जेल में बन्द हो गया है। अहो! यह चैतन्यमूर्ति अमृतस्वरूप भगवान आत्मा को भूलकर मृतक कलेवर जड़ पिण्ड में मूर्च्छित हो गया।

अविकारी आनन्द की अनुभूति के बदले अज्ञान के कारण क्रोधादि विकार का ही कर्ता होकर अज्ञानी उसी का अनुभवन करता है। ज्ञानी तो भेदज्ञान के बल से चैतन्य को तथा क्रोध को पृथक् करके अपने आनन्दमय चैतन्यरस का ही अनुभवन करता है। अज्ञानी तो मृत कलेवर में इतना मूर्च्छित हो गया है कि उससे भिन्न चैतन्यस्वभाव उसे दिखाई नहीं देता।

(समयसार गाथा ९६ के प्रवचन से)

आध्यात्मिक संत, आत्मार्थी पुरुष, पूज्य श्री कानजी स्वामी की सेवा में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

हे चैतन्य विहारी!..... मुक्ति के पावन यात्री!

* अहमदाबाद की जैन जनता का आज परम सौभाग्य है कि आपने यहाँ पधारकर अपने पुनीत चरणकमलों से यहाँ की भूमि को पावन किया है।
* आपके आत्मकल्याणकारी परम अध्यात्म प्रवचनरूपी अमृततत्त्व का पान करके भव आताप शमन करने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है, इसलिये हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। चैतन्य जीवन जीकर आप आत्म-संजीवनी मंत्र दे रहे हैं, इसलिये हम सब आपका हार्दिक स्वागत करते हैं।
* आपकी ओर से मुक्ति का दिव्य संदेश परोक्षरूप से तो मिलता रहता था, किन्तु आज वह दिव्य-संदेश प्रत्यक्षरूप से सुनने को मिलेगा और उससे अनेक भव्य जीव अपना हित कर सकेंगे—यह नि:संदेह है। आप मुक्ति का ऐसा दिव्य संदेश देते हैं, इसलिये हम आपका हार्दिक उल्लासपूर्वक स्वागत करते हैं।
* सांसारिक दु:खों को दूर करनेवाला सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप अमोघ उपाय आप निरंतर दर्शा रहे हैं, उसके लिये हम अत्यन्त भक्ति-भावपूर्वक आपका अत्यन्त विनीतभाव से स्वागत करते हैं।
* आपका सदुपदेश मुख्यत: त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आदर का है; उसके लिये हम आपका परम आदर करते हैं।
* श्रीमद् राजचन्द्र ने जिस अध्यात्म के बीज जैनजगत में बोये थे, उसका आपने अध्यात्म जल सींचकर पोषण किया; इतना ही नहीं, किन्तु सारे भारत में उसका प्रचार एवं प्रसार

किया है। आपके उस सद्धर्म प्रवर्तकपने के लिये हम आपका सच्चे अंत:करणपूर्वक स्वागत करते हैं।

* आपने कार्तिक पूर्णिमा के दिन सोनगढ़ से मंगल-विहार करके शाश्वत तीर्थाधिराज श्री सम्मेदाचल की संघसहित पावन यात्रा की। सम्मेदशिखर में तथा मार्ग में आनेवाले अनेक सिद्धक्षेत्रों में समश्रेणी में विराजमान अनंत सिद्ध-भगवन्तों के दर्शन कराके हमारे जीवन को कृतकृत्य बनाया; उस पावन यात्रा का अन्तिम स्थान अहमदाबाद है, और वहाँ से दु:खों के आत्यंतिक क्षय का शुभ संदेश श्रवण करने का महान सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, उसके लिये अंतर में भक्तिभाव से आपका स्वागत करते हैं।

* आशा है कि आप हमारा यह विनम्र एवं आंतरिक भावपूर्वक स्वागत स्वीकार करके हम सबको उपकृत करेंगे।

अहमदाबाद
वैशाख शुक्ला
प्रतिपदा

विनीत—
मणिभाई जेसिंहभाई
(श्री कानजी स्वामी स्वागत-समिति के प्रमुख)

पुरुषार्थ की भनभनाहट

ज्ञानस्वभाव के आदर के अतिरिक्त अन्य बात नहीं सुनना चाहिये; कर्म आत्मा को हैरान करते हैं—ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात नहीं सुनना चाहिये। जैसे—स्वयं पुरुष हो, लेकिन कोई कहे कि ''तू पुरुष नहीं किन्तु नपुंसक है''—तो वहाँ कितने जोश में आकर विरोध करता है! जो पुरुष हो, वह नपुंसकता की बात नहीं सुन सकता। अंतर में भनभनाहट हुआ अस्वीकार आता है। उसी प्रकार यहाँ पुरुषार्थवान ऐसा भगवान आत्मा पुरुष है; उससे कोई कुगुरु कहे कि ''कर्म और काल तेरे पुरुषार्थ को रोकते हैं—तो ऐसा कहनेवाले ने आत्मा को पुरुषार्थहीन—नपुंसक कहा है। पुरुषार्थी-आत्मार्थी जीव ऐसी बात नहीं सुन सकता; उसका आत्मा पुरुषार्थहीनता की बात सहन नहीं कर सकता; अंतर से नि:शंक विरोध उठता है। उससमय उसे ऐसा नहीं लगता कि—''शास्त्र में क्या कहा होगा—उसे पहले देख लूँ।'' जिसके आत्मा में मोक्ष के पुरुषार्थ की भनभनाहट जागृत हुई है, वह पुरुषार्थहीनता की बात नहीं सुन सकता। ''कर्म पुरुषार्थ को रोकते हैं, अथवा चाहे जितना पुरुषार्थ करने पर भी मुक्ति नहीं होती''—ऐसा कथन जो करते हों, वे शास्त्र मिथ्या, गुरु मिथ्या, वह सम्प्रदाय मिथ्या।—ऐसे कुगुरु-कुशास्त्र अथवा कुमार्ग का धर्मी जीव आदर नहीं करते; नि:शंकरूप से उनकी श्रद्धा छोड़ देते हैं।

जिसके हृदय में सर्वज्ञ विराजमान हैं, जिसने पुरुषार्थ द्वारा केवली भगवान के केलवज्ञान का निर्णय किया है, उस पुरुषार्थी जीव के अनंत भव भगवान ने देखे ही नहीं है। सर्वज्ञ का निर्णय करने के पुरुषार्थ द्वारा जिसका आत्मा भनभना उठा है, वह जीव ''पुरुषार्थ द्वारा भव का नाश नहीं होता''—ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात नहीं सुन सकता; उसे ऐसा लगेगा कि अरे! ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात जगत् के किसी जीव को सुनने के लिये न मिले!

सत् अर्थात् आत्मा का वास्तविक स्वभाव; जिस क्षण उसे पहिचान ले, उसी क्षण उसका आदर हो और असत् का आदर छूट जाये। ''इससमय इतने प्रतिकूल संयोग हैं कि सत् की बात मानेंगे और असत् को छोड़ देंगे तो प्रतिकूलता आ जायेगी और लोग पागल कहेंगे; इसलिये इस समय यह बात प्रगट नहीं करना चाहिये;''—ऐसा जो मानता है, वह संयोग की अनुकूलता के लिये आत्मा को बेच डालता है; उसे आत्मा की यथार्थ महिमा भासित नहीं हुई है; उसने सत् को

नहीं पहिचाना है; उसे आत्मा का प्रेम नहीं है किंतु संयोग का प्रेम है; इसलिये वह पुरुषार्थहीनता की बातें करता है। जिसे आत्मा का प्रेम जागृत हुआ है... जिसे पुरुषार्थ का रंग लगा है... जिसे सत् की महिमा भासित हुई है; उसे तो ऐसा लगता है कि अरे! तीनकाल-तीनलोक भले एकसाथ प्रतिकूल हो जायें, तथापि मैं अपने स्वभाव की रुचि कैसे छोड़ सकता हूँ? जगत भले ही पागल कहें, किंतु मैं सत् को छोड़कर असत् का आदर कैसे कर सकता हूँ? संयोग के लिये स्वभाव को कैसे बेच सकता हूँ? अज्ञानी मूढ़ जीवों का स्वभाव तो सत् का विरोध और निन्दा करने का है; अपने विपरीत स्वभाव को वे अज्ञानी नहीं छोड़ते; तो मैं अपने सच्चे स्वभाव को क्यों छोड़ूँ? स्वभाव को किसी संयोग की अथवा सहायता की आवश्यकता नहीं है। आत्मार्थी जीव को स्वभाव की बात सुनकर पुरुषार्थ करने का जोश आता है, किंतु अज्ञानी-मूढ़ जीव पुरुषार्थहीन नपुंसक हैं; उन्हें स्वभाव की बात सुनकर जोश नहीं आता। पुरुषार्थी जीव तो स्वभाव की बात सुनकर उछल पड़ते हैं कि वाह! हमारा ऐसा स्वभाव!! उसे तो अब प्राप्त करना ही होगा... अब हमारे पुरुषार्थ को जगत् में कोई नहीं रोक सकता.... अब हमारे पुरषार्थ में विघ्न हैं ही नहीं।

जिसे आत्मा की रुचि का ऐसा पुरुषार्थ जागृत हुआ, वह जीव सत्स्वभाव से विरुद्ध बात को स्वीकार नहीं करता। लाखों या करोड़ों लोग एकत्रित होकर विरोध करें, तथापि वह अपने पुरुषार्थ से विचलित नहीं होता... सत्य की दृढ़ता नहीं छोड़ता... पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव की रुचि का जो पानी चढ़ गया है, अब वह नहीं उतरेगा; अल्पकाल में वह अपना कार्य पूर्ण करके ही रहेगा।

परम शांतिदायी
अध्यात्म-भावना

भगवान श्री पूज्यपाद स्वामी रचित 'समाधिशतक' पर
परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के
अध्यात्म भरपूर वैराग्यप्रेरक
प्रवचनों का सार

[४]

अब यहाँ ऐसी आशंका होती है कि—विविक्त आत्मा के स्वरूप का कथन करने की प्रतिज्ञा की तो आत्मा कितने प्रकार के हैं ? और उनमें से कैसा आत्मा उपदेय है तथा कैसा आत्मा हेय है ? आत्मा के कितने प्रकार हैं कि जिनमें से आप पर से विभक्त शुद्ध आत्मा को ही उपादेयरूप बतलाना चाहते हैं ?—ऐसी आशंका के उत्तररूप चौथा श्लोक कहते हैं—

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपायेत्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥४॥

सर्व जीवों में से बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा—ऐसे तीन प्रकार के आत्मा हैं।

★ जो बाह्य शरीरादि पदार्थों को ही आत्मा मानते हैं, वह बहिरात्मा है।

★ जिसे अंतर में देहादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अंतरात्मा है।

★ जिसने चैतन्यशक्ति विकसित करके परम सर्वज्ञपद प्रगट किया है, वह परमात्मा है।

—ऐसे तीन प्रकारों में से सर्वज्ञता और परिपूर्ण आनन्दरूप ऐसा परमात्मपना, परम उपादेय है। अंतरात्मपना उसका उपाय है और बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है। परमात्मा होने का साधन क्या ?—तो कहते हैं कि अंतरात्मपना, वह परमात्मा होने का साधन है। अंतर में परमात्मशक्ति भरी है, उसकी प्रतीति करने पर उसी में से परमात्मदशा प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त बाहर में उसका अन्य कोई साधन है ही नहीं। आत्मा के अंतर अवलोकन में कोई बाह्य वस्तु सहायक भी नहीं है और विघ्नकारी भी नहीं है।—ऐसे अंतरस्वभाव की दृष्टि करे तो अंतरात्मपना हो और बाह्य में आत्मबुद्धिरूप बहिरात्मपना छूट जाये। और जो अंतरात्मा हुआ,

वह अब अंतरशक्ति में एकाग्र होकर परमात्मा हो जायेगा।—इसप्रकार हेयरूप बहिरात्मपने को छोड़ने का तथा उपादेयरूप परमात्मपना प्रगट करने का उपाय अंतरात्मपना है और वह अंतरात्मपना, कर्मादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को जानने से ही होता है; इसलिये यहाँ भिन्न आत्मा का स्वरूप कहा जाता है।

अरिहन्त और सिद्ध भगवान, साक्षात् परमात्मा हो गये हैं। उन परमात्मा को भी परमात्मदशा प्रगट होने से पूर्व बहिरात्मपना था; उसे छोड़कर अंतरात्मा हुए और उस उपाय से परमात्मपना प्रगट किया।

वर्तमान में जो धर्मात्मा-अंतरात्मा हैं, उसे पूर्वकाल में अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था और अब अल्पकाल में परमात्मपना प्रगट होगा।

जो जीव अज्ञानी-बहिरात्मा हैं, उनके आत्मा में भी परमात्मा और अंतरात्मा होने की शक्ति है। आत्मा में केवलज्ञानादि परमात्मशक्ति भरी है। यदि शक्तिरूप से केवलज्ञानादि शक्तियाँ न हों तो उन्हें रोकने में निमित्तरूप केवलज्ञानावरणीय कर्म कैसे हो सकता है? बहिरात्मा को केवलज्ञानावरण है, वह ऐसा सूचित करता है कि उसमें भी शक्तिरूप से केवलज्ञान है।

—इसप्रकार आत्मा की बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा—ऐसी तीन अवस्थाएँ हैं; उनमें से चैतन्यशक्ति की प्रतीति द्वारा बहिरात्मपना छोड़कर परमात्मपना प्रगट करने योग्य है।

❀❀❀

[वीर संवत् २४८२ ज्येष्ठ कृष्ण ६]

(समवशरण-प्रतिष्ठा-वार्षिकोत्सव)

आत्मा का स्वरूप एक समय में परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप है; उसकी अवस्थाएँ तीन प्रकार की हैं। जो अपने चिदानन्दस्वरूप से च्युत होकर बाह्य में—शरीरादि ही मैं हूँ—ऐसा मानता है, वह बहिरात्मा है; वह अधर्मी है; वह मात्र विभाव की ही साधना करता है और जिसने देह से भिन्न, राग से पार अपने ज्ञानानन्दस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा को अंतर में जान लिया है, वह अंतरात्मा है, वह धर्मात्मा है, वह परमात्मदशा का साधक है। और चिदानन्दस्वभाव में लीन होने पर जिन्हें केवलज्ञान, अनंत आनन्द आदि प्रगट हो गये हैं, वे परमात्मा हैं।

बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा—इन तीन दशाओं में से एक समय में एक दशा व्यक्त होती है। बहिरात्मदशा के समय अंतरात्मपना या परमात्मपना व्यक्त नहीं होता; अंतरात्मदशा के

समय परमात्मपना अथवा बहिरात्मपना नहीं होता और परमात्मदशा के समय बहिरात्मपना या अंतरात्मपना नहीं होता। अरिहन्त और सिद्ध भगवान, वे परमात्मा हैं; चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के साधक जीव, वे सभी अंतरात्मा हैं और मिथ्यादृष्टि जीव, बहिरात्मा हैं।

बहिरात्मदशा के समय भी आत्मा की शक्ति में परमात्मा होने की शक्ति विद्यमान है। भगवान ने समवशरण में ऐसी दिव्य घोषणा की है कि अहो जीवों! तुम्हारे आत्मा में परमात्मशक्ति भरी है, उस शक्ति का विश्वास करो। जो जीव अपनी परमात्मशक्ति का विश्वास करते हैं, उनका बहिरात्मपना छूटकर, वे अंतरात्मा होते हैं, और वे अपनी चैतन्यशक्ति में लीन होकर उसमें से परमात्मदशा प्रगट करते हैं।

जो परमात्मा हुए, उनके भी पूर्वकाल में बहिरात्मदशा थी; फिर अपनी परमात्मशक्ति का श्रवण करते हुए उसका बहुमान लाकर, उस ओर उन्मुखता होने से वह बहिरात्मपना दूर हो गया और अन्तरात्मपना हुआ; और फिर स्वभाव में लीन होकर वे परमात्मा हुए। इसप्रकार जो बहिरात्मा थे, वे ही अपनी शक्ति के अवलम्बन से अंतरात्मा होकर परमात्मा हो गये।—ऐसी परमात्मा होने की शक्ति प्रत्येक आत्मा में है अभव्य में भी ऐसी शक्ति है, लेकिन वह कभी अपनी शक्ति की प्रतीति नहीं करता; इसलिये उसे कभी व्यक्त नहीं होती। कोई कहे कि अभव्य जीव में केवलज्ञान की शक्ति नहीं है तो वह बात मिथ्या है। अभव्य को भी केवलज्ञानावरणीय कर्म तो है या नहीं? यदि केवलज्ञान शक्ति न हो तो उसे आवरण करनेवाला कर्म कैसे हो सकता है? अनादि से सर्व जीवों को केवलज्ञानावरणीय कर्म है, और आत्मा में केवलज्ञानादि परम स्वभाव भी अनादिकाल से है; उस स्वभाव की प्रतीति करके, जो उसमें लीन होता है, उसे वह केवलज्ञानादि शक्ति प्रगट हो जाती है और केवलज्ञानावरणीयादि कर्म छूट जाते हैं। यहाँ तो यह बतलाना है कि तेरे आत्मा में इससमय भी परमात्मदशा प्रगट होने की शक्ति विद्यमान है, उसकी प्रतीति कर और बहिरात्मबुद्धि छोड़!

दर्शनमोह-सम्बन्धी सम्यक्त्वमोह प्रकृति तथा सम्यक्त्व-मिथ्यात्वप्रकृति—यह दो प्रकृतियाँ तो अनादि मिथ्यादृष्टि के नहीं होती; वे तो सम्यक्त्व को प्राप्त अमुक जीव के ही होती है। अनादि मिथ्यादृष्टि के तो अकेली मिथ्यात्व प्रकृति ही होती है; अन्य दो प्रकृतियाँ उसके नहीं होती। परन्तु अनादि मिथ्यादृष्टि को अथवा अभव्य के केवलज्ञानावरण तथा मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मप्रकृतियाँ भी नहीं हैं—ऐसा नहीं है; पहले से बारहवें गुणस्थान तक के सर्व जीवों को पाँचों ज्ञानावरण कर्म होते हैं, और दशवें गुणस्थान के अमुक भाग तक ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियों का बंध होता रहता है। इस बंधन पर से यहाँ ऐसा सिद्ध करना है कि सर्व आत्माओं में वह केवलज्ञान

शक्तिरूप से विद्यमान है। 'सर्व जीव छे सिद्ध सम'—शक्तिरूप से सर्व आत्मा परिपूर्ण सिद्ध भगवान जैसे सामर्थ्यवान हैं; किन्तु 'जे समजे ते थाय।'—अपनी स्वभावशक्ति को जो समझ ले, उसे उस शक्ति में से परमात्मदशा प्रगट होती है।

मेरे आत्मा में परमात्मा होने की शक्ति है और उसमें वह परमात्मदशा प्रगट करना उपादेय है। ऐसी शक्ति की प्रतीति करने से बहिरात्मपना छूटकर अन्तरात्मपना होता है और वह परमात्मा होने का उपाय है।—इसप्रकार बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है, परमात्मपना प्रगट करने योग्य है और अन्तरात्मपना उसका उपाय है।

परमात्मशक्ति से परिपूर्ण ऐसे अपने आत्मस्वभाव को भूलकर 'देह, सो मैं; राग, सो मैं'—ऐसी बहिरात्मबुद्धि से, अर्थात् मिथ्याबुद्धि से जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है और वह दु:ख का ही कारण है, इसलिये वह बहिरात्मबुद्धि छोड़नेयोग्य है। बहिरात्मबुद्धि छोड़ने का उपाय क्या?—कि अंतरात्मपना, वह बहिरात्मपने के त्याग का उपाय है। मैं शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ज्ञान-दर्शनस्वरूप एक शाश्वत् आत्मा ही मेरा है, इसके अतिरिक्त संयोग लक्षणरूप कोई भाव मेरे नहीं हैं, वे मुझसे बाह्य हैं;—ऐसा भेदज्ञान करके आत्मा के अंतरस्वभाव में आत्मबुद्धि करना, सो अंतरात्मपना है।—ऐसे अंतरात्मपनेरूप साधन द्वारा परमात्मदशा प्रगट करने का उपाय करना चाहिये।

धर्मात्मा का प्रतिक्रमण

चिदानन्द तत्त्व का भान करके जिसने अपने आत्मा में 'ज्ञान-दीपक' जलाये और अज्ञान-अन्धकार का नाश किया, वह जीव 'धर्म दिवाकर' है.... परमात्मसुख का अभिलाषी ऐसा वह 'परम पुरुषार्थ परायण भव्य जीव' चिदानन्दस्वभाव के आश्रय से निश्चयरत्नत्रय की भावना करता है। .....जीव ने पूर्व अनादिकाल से मिथ्यात्वादि भाव भाये हैं, किन्तु चिदानन्दस्वभाव का आश्रय करके सम्यक्त्वादि भावों को कभी नहीं भाया। अति आसन्नभव्य मुमुक्षु जीव उन मिथ्यात्वादि भावों को छोड़कर अपने परमात्मतत्त्व के आश्रय से सम्यग्दर्शनादि भावोंरूप परिणमित होता है;—यही उस धर्मात्मा का प्रतिक्रमण है। चिदानन्द तत्त्व के आश्रय से सम्यक्त्वादि की भावना, भवभ्रमण का नाश करनेवाली है। ऐसी अपूर्व भावनावाला जीव अति आसन्नभव्य है; वह अल्पकाल में ही मुक्ति प्राप्त करता है।

[—प्रवचन से]

हे जीव! चैतन्यतत्त्व से प्रेम कर

(मगसीर कृष्ण ४ के दिन, पोलारपुर ग्राम में पू० गुरुदेव का प्रवचन)

आत्मा का धर्म क्या है, उसकी यह बात है। भगवान सर्वज्ञदेव जब अपने परिपूर्ण सर्वज्ञ -स्वभाव को प्राप्त हुए और जगत के पदार्थों को जाना, तब उनकी दिव्यध्वनि में चैतन्यतत्त्व का जो उपदेश प्रगट हुआ, उसका यह वर्णन है। आत्मा चैतन्यस्वरूप है; उसका स्व से एकत्व और पर से पृथकत्व है। ऐसे आत्मस्वरूप का श्रवण मिलना दुर्लभ है।

इस संसार में अनादिकाल से परिभ्रमण करते हुए जीवों को मनुष्यपने की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, और मनुष्यभव में भी चैतन्यतत्त्व की बात का श्रवण अत्यन्त दुर्लभ है। जीव ने अनंत बार नर्क के अवतार धारण किये, उनसे भी अनंतगुने वे स्वर्ग के अवतार किये। उन स्वर्ग के अवतारों की अपेक्षा जगत को मनुष्यत्व दुर्लभ है। तथापि जीव मनुष्यत्व भी अनंत बार प्राप्त कर चुका है, किन्तु मनुष्यत्व में भी आत्मा की सच्ची पहिचान अत्यन्त दुर्लभ है। जीवों को बोधि अत्यन्त दुर्लभ है; इसलिये शास्त्रों ने ''बोधि दुर्लभ'' भावना का वर्णन किया है। स्वर्ग के देव भी ऐसी भावना करते हैं कि हम मनुष्य अवतार प्राप्त करके मुनि होकर कब आत्मानंद में लीन हों और कब मुक्ति प्राप्त करें! आत्मा के आनन्द की प्राप्ति हो, उसका नाम मुक्ति है।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जीव! तेरा आत्मा इन देहादि से भिन्न ज्ञानस्वरूप है, उसे तू जान—

चित्तत्वं यत्प्रतिप्राणी देह एव व्यवस्थितम्।
तमच्छन्ना न जानन्ति भ्रमन्ति च बहिर्बहिः ॥४॥

आज विहार का चौथा दिन है और यह चौथा श्लोक पढ़ा जा रहा है! उसमें कहते हैं कि अहो! यह चैतन्यस्वरूप आत्मा प्रत्येक प्राणी के शरीर में स्थित है, किन्तु अज्ञान से अंध हुए लोग उसे न जानकर बाह्य में भटकते हैं।

देखो, जगत में यह चैतन्य हीरा ही सर्वोत्तम वस्तु है। लोग बाह्य में सुख मानते हैं, किन्तु उसमें सुख नहीं है। एक पंडित करोड़ों के मूल्य का हीरा देखने गया। किसी ने उससे पूछा कि—क्यों पण्डितजी! हीरा कैसा है? तब पंडितजी बोले कि भाई! हीरा मूल्यवान तो अवश्य है, किन्तु यदि यह आँख न हो तो उस हीरे को कौन देख सकता है? हीरे को आँख देखती है, इसलिये सच्चा मूल्य तो आँख का है।—यह तो दृष्टान्त है; उसीप्रकार यह आत्मा जगत का ज्ञाता चैतन्य हीरा

है; यदि वह न हो तो जगत के अस्तित्व को कौन जानेगा ? इसलिये सर्वोत्तम तो चैतन्यरत्न ही है।

करोड़ों रुपये देने पर भी इस शरीर की एक आँख नहीं मिलती; किन्तु यदि अंतर में चैतन्य न हो तो यह आँख आदि भी किस काम के ? इसलिये चैतन्यतत्त्व ही जगत में उत्तम है।

देखो ! संत, चैतन्यतत्त्व की प्रशंसा कर रहे हैं। कोई शरीर की अथवा कुटुम्ब की प्रशंसा करे तो लोग उसे प्रेमपूर्वक सुनते हैं, किन्तु चैतन्यतत्त्व का प्रेम उन्होंने कभी प्रगट नहीं किया। जगत को बाह्य विषयों में रुचि है, किन्तु अंतरंग चैतन्यतत्त्व का प्रेम नहीं है। यदि आत्मा का प्रेम करे, तो उसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, उसका स्वाद आये। 'राज्य रत्न' की पदवी मिले तो संतुष्ट हो जाता है, किन्तु भगवान ने यह 'चैतन्यरत्न' की पदवी प्रदान की है, उसे जीव नहीं पहिचानता ! सात पीढ़ी की प्रशंसा सुने तो वहाँ हर्ष और गर्व चढ़ता है; किन्तु यहाँ 'तेरा आत्मा सर्वज्ञ भगवान जैसा है'—ऐसा संत कहते हैं; किन्तु उसे सुनकर जीव को पौरुष नहीं चढ़ता। जिसे आत्मा का प्रेम हो, उसे उसकी बात सुनते ही अंतर से उल्लास प्रगट होता है, और वह आत्मा के अनुभव का पुरुषार्थ करता है। भाई ! यह धर्म कथा है; तेरे आत्मा को धर्म की अर्थात् सुख की प्राप्ति कैसे हो—उसकी यह बात है। भाई ! तेरा आनन्द बाह्य में नहीं है; स्त्री में, पैसे में, शरीर में, मन में अथवा अंतर में शुभ-अशुभ वृत्ति उठे, उसमें भी तेरा आनन्द नहीं है। तेरा आनन्द तो तेरे एकत्वस्वरूप में ही है। अपने आनन्द की कहानी तो सुन ! तेरे आत्मा का दु:खों से उद्धार करे, ऐसे धर्म की बात है। उसका प्रेम लाकर एक बार सुन तो सही ! अंतर में ही आनन्द भरा है, किन्तु उसे भूलकर अज्ञानी जीव बाह्य में भटकते हैं;—आत्मा में आनन्द भरा है, उसे नहीं ढूढँते। दो सौ रुपये का गहना खो गया हो तो कितनी खोज और छानबीन करता है; किन्तु यह सम्पूर्ण चैतन्यभगवान अनादि से खो गया है, उसे ढूँढने की—समझने की दरकार नहीं करता। प्यारा पुत्र रात को घर न आये तो वह कहाँ खो गया होगा ?—उसकी चिन्ता में बैचेन हो जाता है; नींद नहीं आती। उसी प्रकार जिसे आत्मा प्यारा हो, उसे उसकी प्राप्ति हुए बिना कहीं चैन नहीं आता। अहो ! सर्वज्ञदेव ने मेरे चैतन्य की अपार महिमा गाई है, उसे मैं कैसे प्राप्त करूँ ?—इसप्रकार अंतर में उसकी खोज करता ही रहता है। सर्वज्ञ भगवान ने चैतन्यपद की अपार महिमा गाई है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं कि—

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहि ते पण श्री भगवान जो,
तेह स्वरूप ने अन्य वाणी तो शुं कहे ?
अनुभवगोचर मात्र रह्य ते ज्ञान जो...

अहो! इस चैतन्यपद की अपार महिमा का वर्णन वाणी द्वारा नहीं हो सकता, उसका अनुभव तो ज्ञान से ही हो सकता है। ऐसे अपने चैतन्यपद को पहिचानने के लिये महान रुचि जागृत होना चाहिये। भाई! एक बार तू आत्मा का प्रेमी बन। संत पुरुष चैतन्य के गीत गा-गाकर उसकी महिमा बतलाते हैं, किन्तू मूढ़ पामर जीवों को संसार की तीव्र ममता के कारण आत्मा की महिमा नहीं आती। देखो, दो भँवरे थे। एक भँवरा सुगन्धित फूलों में रहता था और दूसरा दुर्गंध में। फूलों में रहनेवाले भंवरे को विचार आया कि दुर्गंध के भंवरे को मैं फूलों की सुगन्ध का अनुभव कराऊँ।—और ऐसा सोचकर वह दूसरे भँवरे को सुगन्धित फूलों में ले गया और पूछा, क्यों भाई! सुगन्ध आ रही है न? तो वह भँवरा बोला कि भाई! मुझे बिलकुल सुगन्ध नहीं आती; पहले जैसी ही दुर्गंध का अनुभव हो रहा है। तब फूलों के भँवरे ने सोचा कि इसका क्या कारण होगा? देखने पर उसे मालूम हुआ कि उस भँवरे की नाक में दो दुर्गंध की गोलियाँ भरी हैं। नाक में दुर्गंध की गोलियाँ भरी हों तो सुगन्ध का अनुभव कैसे हो सकता है? इसलिये उसने उस भँवरे से कहा कि तूने अपनी नाम में जो दुर्गंध की गोलियाँ भर रखी हैं, इन्हें निकाल दे और फिर इन फूलों की गंध ले तो तुझे सुगन्ध आयेगी। उसी प्रकार संत-धर्मात्मा बाह्य विषयों की रुचिरूप दुर्गंध छोड़कर चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते हैं और अन्य जीवों को भी बतलाते हैं कि अरे जीवों! तुम्हारे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, उसका स्वाद लो। उस समय विषयों का तीव्र लोलुपी उस दुर्गंध के भँवरे जैसा मूढ़ जीव कहता है कि—हमें तो आत्मा में कोई सुख दिखाई नहीं देता, हमें तो बाह्य विषयों में सुख भासित होता है। ज्ञानी उससे कहते हैं कि अरे भाई! एक बार बाह्य विषयों की प्रीति छोड़ और आत्मा के स्वभाव का प्रेम कर। आत्मा की अपेक्षा बाह्य विषयों का प्रेम बढ़ जाये तो आत्मा के आनन्द का स्वाद कैसे आ सकता है? इसलिये एक बार बाह्य विषयों का प्रेम छोड़कर चैतन्यस्वभाव का प्रेम कर और उसमें अपने आनन्द की खोज कर, तो अवश्य ही तुझे अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आयेगा।

जिसप्रकार तालाब में उतरने के लिये उसका घाट ढूँढते हैं कि कहीं इसका घाट है? उसी प्रकार जिसे जन्म-मरण की थकावट लगी हो, वह उससे पार उतरने का घाट ढूँढता है कि 'किसी प्रकार इस जन्म-मरण का अन्त आयेगा।' एक किसान भी पूछता था कि—'महाराज! इस दुःख से पार उतरने का कोई घाट है?'—इसप्रकार जिसे जन्म-मरण का भय लगे और उससे छूटने की आकांक्षा जागृत हो, वह बारम्बार सत्समागम करके उसका उपाय ढूँढता है।—इसप्रकार सत्समागम से बारम्बार परिचय करके आत्मस्वभाव को समझना, वह जन्म-मरण से छूटने का उपाय है।

पूज्य श्री कानजी स्वामी के

प्रभाव से

- १६७ वीतरागी जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा हुई।
- १६ नवीन दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।
- ९ बार पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव हुए।
- ७ स्थानों पर वेदी-प्रतिष्ठा-महोत्सव हुए।
- ३ लाख पुस्तकें (दिगम्बर जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रकाशित हुईं।)
- २५ से अधिक कुमार-कुमारिकाओं ने आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार की।
- हजारों मनुष्यों ने दिगम्बर जैन धर्म अंगीकार किया।
- श्राविका-ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हुई।
- दो बार श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र की संघयात्रा हुई।
- सम्मेदशिखर आदि तीर्थधामों की संघयात्रा हुई।

हित वचन

1. जीव को सुख प्यारा है, दु:ख प्यारा नहीं है।

2. मोक्षपद ही आत्मा को परम सुखरूप है; बाह्य में सुख नहीं है।

3. यदि संयोग में सुख होता तो तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुष राज्यादि वैभव को छोड़कर क्यों चले गये ? और आत्मसाधन में किसलिये एकाग्र हुए ?

4. उन महापुरुषों ने ऐसा देखा कि आत्मा में ही सुख है, संयोगों में सुख नहीं है; इसलिये संयोगी वृत्ति को छोड़कर वे स्वभाव में एकाग्र हुए। परोन्मुखता छोड़कर स्वोन्मुख हुए।

5. स्वभाव के ओर की एकाग्रता, वह सुखों की जननी है, संयोगों के ओर की तृष्णा, वह दु:खों की जननी है।

6. हे जीव ! एक बार दृढ़ विश्वास कर... कि अंतरमुख होने में ही मेरा हित है; बर्हिमुखता में मेरा हित नहीं है—ऐसा दृढ़ विश्वास करेगा तो अंतरमुख होने का अवसर आयेगा... और तेरा हित होगा।

7. कालकूट सर्प का विष तो एक बार मृत्यु का कारण होता है (और वह भी आयु पूर्ण हुई हो तो), किन्तु विपरीत दृष्टिरूपी मिथ्यात्व का विष तो संसार में अनंत जन्म-मरण करता है; इसलिये हे जीव ! अनंत चैतन्यशक्ति से परिपूर्ण अपने अमृतस्वरूप आत्मा को पहिचानकर उसके अनुभव का उद्यम कर, वही तेरे आत्मा को अनन्त जन्म-मरण से उबारनेवाला है।

8. हे जीव ! तू अपनी आत्मशक्ति का विश्वास कर; तेरी शक्ति छोटी (क्षणिक विकार जितनी) नहीं है, तेरी शक्ति तो महान है; तेरा आत्मा अनंत शक्ति से महान है। तुझमें सिद्ध भगवान जितनी महान शक्ति है; तो फिर तूझे दूसरों की क्या आवश्यकता है ? इसलिये तू अपनी शक्ति का विश्वास कर। अपनी शक्ति के अविश्वास से ही तू बाह्य में भटक-भटक कर दु:खी हो रहा है।

9. बाह्य संयोग-वियोग में हर्ष-शोक करके अज्ञानी उसके वेदन में इतना मूर्च्छित हो जाता है कि उससे भिन्न आत्मा का अस्तित्व ही भूल जाता है। किंचित् प्रतिकूलता आये वहाँ तो ऐसा दु:खी हो जाता है मानों आत्मा खो गया हो। किन्तु भाई ! संयोग-वियोग यदि संसारी को नहीं आयेंगे तो क्या सिद्ध को आयेंगे ? संयोग-वियोग अथवा हर्ष-शोक सिद्ध भगवान को नहीं होते। निचली -दशा में तो वे होते हैं किन्तु उनके होने पर भी मैं तो उनसे भिन्न ज्ञानस्वभावी सिद्ध समान हूँ—इस प्रकार शुद्ध आत्मा को ध्येयरूप रखकर उस ओर उन्मुख हो तो तेरा परिणमन सिद्धदशा की ओर होता रहेगा और सिद्ध भगवान जैसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन विकसित होता जायेगा।

सच्चा मार्गदर्शन

जीवों को यह आत्मस्वभाव की बात महँगी पड़ती है, इसलिये दूसरा मार्ग लेने से धर्म हो जायेगा—ऐसी विपरीत शल्य उन्हें लग गई है। किन्तु भाई! तू अनंत वर्ष तक बाह्य में देखता रहे तब भी आत्मधर्म प्रगट नहीं हो सकता; इसलिये पर का आश्रय छोड़कर स्वतत्त्व की रुचि करना... प्रेम करना... मनन करना... वही सत् स्वभाव को प्रगट करने का (धर्म का) उपाय है। आचार्यदेव कहते हैं कि—जो अपना हित चाहते हैं, उन्हें ऐसा करना चाहिये। जिसे अपना हित करना हो, उसे ऐसी गरज होगी।

[पूज्य बेन श्री बेन लिखित समयसार प्रवचन से]

ग्राहकों को सूचना

आत्मधर्म का वार्षिक चंदा (लवाजम) चैत्र मास में पूर्ण होता है। इसलिये कृपया ३) मनी० से शीघ्र भेज दीजिये जिससे वी०पी० खर्च ॥=) की आपको बचत होगी यदि ग्राहक न होना तो पत्र द्वारा सूचित करें ताकि संस्था को ॥=) का नुकसान न हो। आशा है आप इसमें देरी न करेंगे।

निवेदक—

मैनेजर श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२॥)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समयसार पद्यानुवाद	।)
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
आत्मावलोकन	१)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७-८-१० वर्ष	३।।।)
द्वितीय भाग	॥-)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७,, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ
लेने वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।